



## वर्तमान में सेवासदन उपन्यास की प्रासंगिकता

डॉ. रेनू जोशी

असि. प्रो. हिन्दी, राजकीय महाविद्यालय लमगड़ा (अल्मोडा)

### सारांश

हिन्दी के आधुनिक साहित्य में प्रेमचन्द का स्थान सर्वप्रमुख है। उनका साहित्य संवेदनशील मनुष्य की बर्हिमुखी प्रवृत्तियों का संघर्ष चित्रित करता है। क्योंकि उनके साहित्य का प्रमुख केन्द्र यथार्थवादी मानव समाज ही रहा है। मूलतः मनुष्य का जीवन सामाजिक एवं सामूहिक चेतना से प्रभावित होकर जीवन के अनन्त प्रवाह में सम्मिलित होना चाहता है। इसलिये जो भी वस्तुएं उनकी भावनाओं के प्रवाह में बाधक बनती हैं वह अस्वाभाविक हैं। प्रेमचन्द अपने उपन्यासों में झूठे आदर्शों को स्थान न देकर नये आदर्शों की स्थापना करना चाहते थे। जहाँ मानवता के शाश्वत मूल्यों की पहचान हो सके। उन्होंने भारतीय जीवन की वास्तविकता को उसके निकट से झांककर देखने का प्रयत्न किया। जिससे उनके साहित्य में भावों की विपुलता, विभिन्नता, गम्भीरता और प्रखरता स्पष्ट दिखाई देती है। जो उनके साहित्य को प्रासंगिक बनाती है। प्रेमचन्द अपने काल और परिवेश से जुड़े हुए लेखक हैं। इसलिये उनके साहित्य में जिस युग बोध का आभास होता है, वह आज भी परिलक्षित होता है। सेवासदन उपन्यास का पात्र रामदास जो श्री बॉके बिहारी के नाम पर समाज का शोषण करता है, हत्या करवाता है, मन्दिरों में वेश्यावृत्ति करवाता है, और रामनामी दुपट्टा ओढ़कर वासनामयी दृष्टि से महिलाओं को देखता है। इसी उपन्यास की पात्र सुमन दहेज प्रथा के कुपरिणाम के कारण वेश्या बना दी जाती है, दालमण्डी पर बैठने के लिये उसे विवश कर दिया जाता है। ऐसे ही लोग आज भी हमारे समाज में इससे भी अधिक विकराल रूप में दिखाई देते हैं। आज भी अनमेल विवाह होते हैं, दहेज प्रथा के कुपरिणाम देखने को मिलते हैं, पाखंडियों के जत्थे के जत्थे आज भी स्वतंत्र घूम रहे हैं, दालमण्डी आबाद है, सच्चरित्र व्यक्तियों की दुर्गति समाज द्वारा हो रही है, रिश्वत ली जा रही है, हमारा समाज आज भी उन समस्याओं से जूझ रहा है, जिनसे प्रेमचन्द का समाज जूझ रहा था। धर्म की आड में व्यभिचार, भोग विलास, अनैतिकता और आर्थिक लूट खसोट वर्तमान में भी स्पष्ट दिखाई देती है। इस प्रकार प्रेमचन्द के समय की अनेक आचरण सम्बन्धि विकृतियाँ आज भी परिलक्षित होती हैं, जो उनके साहित्य को प्रासंगिक बनाने में सहायक होती है।

**मुख्य शब्द**—प्रासंगिक, अवस्थाएँ, महाजनी सभ्यता, यथार्थवादी, कालजयी, राग—विरागात्मक, दालमण्डी, कलुषित, मनोविकार।

### प्रस्तावना—

साहित्यकार और कलाकार दोनों का स्वभाव एक सा होता है। दोनों प्रगतिशील रहते हैं उसे अपने अन्दर और बाहर एक कमी महसूस होती रहती है। उस कमी को पूरा करने के लिए उसकी आत्मा बैचैन रहती है। एक साहित्यकार व्यक्ति और समाज को सुख और स्वच्छता की अवस्था में देखना चाहता है। समाज की सामाजिक अवस्थाएँ उसके दिल को कचोटती रहती है। वह इन अवस्थाओं (सामाजिक बुराइयों) का अन्त कर देना चाहता है कि क्यों एक सम्प्रदाय सामाजिक रूढ़ियों के बन्धन में पडकर कष्ट भोगता रहे। क्यों न वह ऐसा सामान इकट्ठा करे कि वह गुलामी और गरीबी से छुटकारा पा जाये वह इस वेदना को दिल की जिस गहराइयों से अनुभव करता है, उसका रचना संसार उतना ही सच्चाई पैदा



करता है। साहित्यकार प्रेमचन्द का मानना है कि सारी बुराईयों की जड़ धन की असमानता है। इस असमानता के कारण ही समाज में ईर्ष्या, द्वेष, बेईमानी, झूठ, आरोप, जबरदस्ती, वेश्यावृत्ति, व्यभिचार, आदि बुराईयों जन्म लेती हैं। महाजनी सभ्यता ही इन सब बुराईयों की जननी है। वह चाहती है, कि दलित पीडित और विजित इसे ईश्वरीय विधान समझकर अपनी स्थिति पर संतुष्ट रहें। जहाँ धन की यह असमानता न हो तो वहाँ सभी मनुष्य एक स्थिति में हैं, वहाँ झूठे मुकदमे, चोरी डकैती, सतीत्व विक्रय, दलित, पीडित व्यक्ति क्यों हो। इसलिये प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास के जो मानदण्ड स्थापित किये, उनका अनुसरण आज भी जारी है। वे साहित्य सृजन ही नहीं करते वरन् समाज की समस्याओं में उलझते हुए दिखाई पड़ते हैं। वह समाज की अप्रिय अवस्थाओं का अन्त कर देना चाहते थे।

प्रेमचन्द मूल रूप से उर्दू कलेखक थे, अपने आरम्भ काल में वे उर्दू में उपन्यास लिखते थे और बाद में उनका हिन्दी में रूपान्तरण करते, ऐसी ही एक उर्दू रचना 1906 में "हम खुर्मा ओ हम सवाब" नाम से प्रकाशित हुई, फिर उन्होंने इसे हिन्दी में रूपान्तरित कर 1907 में "प्रेमा" नाम से प्रकाशित किया, जो प्रेमचन्द का हिन्दी का पहला उपन्यास माना जाता है। उस समय प्रेमचन्द आर्य समाज के आदर्शों से आकर्षित थे। जहाँ उस समय विधवा विवाह की समस्या का प्रचलन था, उसी विधवा विवाह की समस्या को उन्होंने अपने उपन्यास प्रेमा में प्रस्तुत किया। इसके बाद प्रेमचन्द ने प्रतिज्ञा, सेवासदन, प्रेमाश्रय, वरदान, इत्यादि हिन्दी उपन्यासों की रचना की। उन्होंने भारतीय समाज की वास्तविकता को उसके निकट से झॉककर देखने का प्रयत्न किया और भारतीय जीवन तथा उसके दलित समाज को देखकर उसका चित्रण ही नहीं किया वरन् इस हीन स्थिति के मूल कारण को जानने के लिये गंभीर चिंतन को चित्रित किया। अपने साहित्य के द्वारा वे मानव समाज के सामने एक ऐसा हल प्रस्तुत करने के लिये प्रयत्नशील रहे जिससे समाज में दम धुटने वाले वातावरण से हटकर पवित्र स्वच्छ वायु में साँस ले सकें। जिस आदर्श रूप तक वर्तमान समाज को पहुँचा देने की प्रेरणा प्रेमचन्द साहित्य के द्वारा प्रदान करना चाहते थे। वे जीवन कैसा है के स्थान पर जीवन कैसा होना चाहिये" पर ध्यान देते थे। यही कारण उन्हें यथार्थवादी होते हुए भी आदर्श की ओर उन्मुख करता है। वे समाज को अपने उपन्यास की कल्पना के माध्यम से मूर्त रूप में देखना चाहते थे।

प्राचीन समय में सामान्य नागरिक भी सत्ता तक पहुँचने का स्वप्न देखता था, और वहाँ तक पहुँचने का प्रयास करता था। यही सब आज की राजनीति में भी देखने को मिलता है। जो धार्मिक आडम्बर, अंधश्रद्धा, धर्म और राजनीति, मुनियों के आचरण में अनेक स्वार्थ परक वृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। वर्तमान समय में भी धर्म की आड़ में व्यभिचार, भोग विलास, अनैतिकता, और आर्थिक लूट खसोट स्पष्ट परिलक्षित होती है। जो रचनायें मनुष्य के बाह्य जगत को भेदकर उसके आन्तरिक भावों को उकेरती हैं, वही रचनायें कालजयी कहलाती हैं। तुलसी के मर्यादा पुरुषोत्तम राम, गीता के कृष्ण, महाभारत के अनेक पात्र आज भी मानवीय स्वभाव की नितान्त एवं स्वाभाविक राग-विरागात्मक प्रस्तुतियाँ हैं। उनकी अनुभूति और वेदना सामान्य जन की अनुभूति और वेदना है। इसी कारण प्रेमचन्द के साहित्य के चरित्रों के भाव आज के जनमानस को अपने भीतर के भाव लगते हैं। भावों की विपुलता, विभिन्नता, गम्भीरता, और प्रखरता प्रेमचन्द के साहित्य में स्पष्ट परिलक्षित होती है। जो उनके साहित्य को प्रासंगिक बनाने में सहायक है।

प्रासंगिकता के सम्बन्ध में डॉ रमेश चन्द्र शाह जी का कथन है कि "रचना की प्रासंगिकता का निष्कर्ष इकहरा नहीं हो सकता क्योंकि वह रचना की प्रासंगिकता का निष्कर्ष है। जिसका रचनात्मक काव्य संस्कृति के मूल्यों पर भी प्रासंगिक हो। इसके साथ ही साथ रचना वह प्रासंगिक है जो अपने समय की मानव सच्चाईयों का पूरी जटिलता के साथ साक्षात्कार करवाती हो। यह दोहरी प्रासंगिकता रचना की राह में हर अवरोध को हर रचनाद्रोही परिस्थितियों को तोड़ने वाली होगी और मनुष्य मात्र की स्वतंत्रता के लिये संघर्ष करने वाली होगी। जाहिर है कि यह तभी हो सकता है जब रचना समसामयिक ही न हो बल्कि मनुष्य मात्र की स्वतंत्रता को कुंठित करने वाले हर खतरे को सूध लेने वाली हो। अतीत की वर्तमानता को पहचानने वाली हो।"1 प्रेमचन्द का उपन्यास सेवासदन इन सभी बातों पर खरा उतरता है।

दहेज प्रथा आज दिन प्रतिदिन विकराल रूप धारण करती जा रही है। प्रेमचन्द ने अपने साहित्य में इस समस्या से समाज में कतिपय अन्य समस्याओं को उत्पन्न होते दिखाया है। सेवासदन उपन्यास जो आज अपने 100 वर्ष पूरे कर चुका है, उसमें दर्शाया गया है कि दहेज प्रथा हमारे समाज की युवतियों का जीवन नारकीय

बनाती जा रही है। इस उपन्यास की नायिका सुमन का विवाह मजदूर व विधुर गजाधर के साथ इसलिये होता है, क्योंकि उनके पास दहेज देने की सामर्थ्य नहीं थी। प्रेमचन्द ने बताया कि— "गंगाजली दामाद को देखकर बहुत रोई, उसे ऐसा दुख हुआ मानो किसी ने सुमन को कुँए में डाल दिया"।<sup>12</sup> अच्छे संस्कारों में पली बड़ी सुमन धनाभाव व सम्मान प्राप्त करने की लालसा में वेश्या बन जाती है। प्रेमचन्द ने ऐसा अनुभव किया कि यदि हमारे समाज में कुप्रथा नहीं होती तो सुमन का विवाह गजाधर जैसे अंधे व्यक्ति के साथ नहीं होता और सुमन वेश्या नहीं होती। यहाँ पर मैथिलिशरण गुप्त जी की यह पंक्तियाँ बड़ी सटीक बैठती हैं — "अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी। आँचल में है दूध और आँखों में पानी"। यहाँ पर प्रेमचन्द ने सुमन के माध्यम से दहेज प्रथा को वेश्यावृत्ति के लिये उत्तरदायी माना है साथ ही दहेज की रकम न चुका सकने के कारण एक ईमानदार पिता अपनी ईमानदारी को बेच देता है। जहाँ लोग अपनी बुराईयों पर पछताते हैं वहाँ सेवासदन के पात्र दरोगा कृष्णचन्द्र अपनी ईमानदारी पर पछता रहे हैं। सेवासदन उपन्यास के प्रारम्भ में प्रेमचन्द ने कहा है कि" पश्चाताप के कडवे फल कभी न कभी सभी को चखने पडते हैं लेकिन और लोग बुराईयों पर पछताते हैं दरोगा कृष्णचन्द्र अपनी भलाईयों पर पछता रहे हैं "।<sup>13</sup> उन्हें थानेदारी करते हुए 25 वर्ष हो गये, लेकिन उन्होंने अपनी नियत को कभी बिगडने नहीं दिया। उनकी सती साध्वी पत्नी ने हमेशा कुमार्ग से बचाया, परन्तु बेटियों के लिये वर की खोज में जब वर पक्ष से राशि वर्ण ठीक हो जाता था तब लेन देन की बातें होने पर कृष्णचन्द्र की आँखों के आगे अँधेरा छा जाता था। कोई पाँच हजार कहता तो कोई चार हजार। उन्होंने निश्चार्थ भाव से अपना कर्तव्य पालन किया था। लेकिन इन सब बातों से वह अपनी सरलता और विवेक पर हाथ मल रहे थे। क्योंकि जीवन भर की सच्चरित्रता व्यर्थ हो रही थी। दहेज की समस्या ने कृष्णचन्द्र को झकझोर दिया। इसके बाद एक मुकदमे में फॉसे महन्त रामदास से तीन हजार रुपये रिश्वत माँगने को वह मजबूर हो जाते हैं। और इस काम में रंगे हाथों पकडे भी जाते हैं, पाँच वर्ष की कैद मिल जाती है। इस प्रकार दरोगा जी अपनी पुत्री सुमन के योग्य वर ढूँढने के चक्कर में जीवन भर की कमाई ईमानदारी, सच्चाई और सन्मार्ग को तिलांजलि देने को मजबूर हो गये।

उपन्यास में प्रारम्भ से अन्त तक दहेज प्रथा के विविध पहलुओं पर, घटनाक्रम तथा चरित्रों द्वारा विचार प्रस्तुत किये गये हैं। वेश्याप्रथा क्यों पनपती है, कौन इसका उत्तरदायी है वही समाज जहाँ वह जन्मी, और यौवन की दहलीज पर उसने पाँव रखा। उपन्यास के पात्र वकील पद्मसिंह इस समस्या के लिये मध्यवर्गीय समाज को ही उत्तरदायी मानते हैं। "यह हमारी ही कुवासनायें हैं, हमारे ही सामाजिक अत्याचार, हमारी ही कुप्रथायें हैं, जिन्होंने वेश्याओं का रूप धारण किया। यह दालमण्डी हमारे ही कलुषित जीवन का प्रतिबिम्ब, हमारे ही अधर्म का साक्षात् स्वरूप हैं हमारे समाज के दुराचार अग्नि के समान हैं और ये रमणियाँ तृण के समान हैं"।<sup>14</sup> सुमन वेश्यावृत्ति स्वीकार करने को क्यों बाधित हुई, उसमें समाज की जिम्मेदारी कितनी है, वेश्याओं को बाजार के बीच रूपराशि के व्यापार करने की छूट देने से क्या दुष्परिणाम होते हैं। वेश्याप्रथा के निवारण के तात्कालिक तथा दूरगामी क्या उपाय हो सकते हैं। जो वेश्यावृत्ति स्वीकार कर गुमराह हुई उसे समाज कैसी भयंकर एवं अन्यायपूर्ण सजा देता है। यद्यपि वह अपने किये पर पछतावा करे, आँसू बहाये, और समाज के लिये उपयोगी कार्य करने में जीवन व्यतीत करे। सभी बातों पर लेखक ने बड़ी सूक्ष्मता एवं सावधानी के साथ विचार प्रस्तुत किये हैं। साथ ही वेश्याओं की समस्या पर यथार्थ मिश्रित आदर्शवादी दृष्टिकोण भी दर्शाया है। क्योंकि वेश्याओं में भी मान अपमान की भावना होती है, और स्नेह — सहानुभूति द्वारा सत्पुरुष उन्हें सुमार्ग पर ला सकते हैं। उन्हें वासना-वृत्ति का साधन न समझकर समाज को उनके प्रति अपना उत्तरदायित्व निभाने के लिये कटिबद्ध होना चाहिये। भोली की सच्चाई सुमन उत्सव पर, रामनौमी पर मन्दिर में, तथा समाज के सुप्रतिष्ठित पद्मसिंह के यहाँ विजयोत्सव में अच्छी तरह देख चुकी थी। उसने अनुभव किया था, कि भोली के सामने केवल धन ही नहीं धर्म भी सिर झुकाता है। बड़े-बड़े सेठ साहूकार, विद्वान धर्मात्मा पण्डित मौलाना और नगर के गणमान्य सज्जन सभी लोग वेश्या भोली से हँसकर दो बात करने का मौका पाकर आनन्द से ऐसे गद्गद् हो जाते थे, मानो कोई खजाना मिल गया हो। लोग उसके ईशारों पर नाचते थे, उसका खूब आदर सत्कार करते थे। सुमन के सुकोमल मन पर इन सब बातों ने वज्र का सा आघात किया था। श्रेष्ठपन का उसका सब अभिमान चूर-चूर हो गया था। यह सत्य है कि "हमारा चरित्र कितना ही दृढ हो, पर उस पर संगति का प्रभाव अवश्य होता है"।<sup>15</sup>

समाज में फैली हुई इस वेश्यावृत्ति का कारण ढूंढते हुए प्रेमचन्द ने कहा है, कि उसके लिये व्यक्तियों को दोषी न ठहराकर तत्कालीन समाज व्यवस्था को जिम्मेदार ठहराया है— उन्होंने यह बात स्पष्ट कर दी है, कि "वेश्याएँ कोई विधाता की ओर से बनकर नहीं आती। यह निष्ठुर समाज ही हमारी बहू-बेटियों को वेश्याएँ बनने पर मजबूर करता है"।<sup>6</sup>

वेश्यावृत्ति के मूल कारणों की ओर अधिक गहराई में उतरते हुए आर्थिक विषमता, मनोविकार, तथा सामाजिक कुप्रथाओं आदि से सम्बन्धित मूलभूत कारणों का निर्देश, उपन्यास के पात्र कुँवर अनिरुद्ध सिंह निम्न शब्दों में करते हैं— "हम रात दिन जो रिश्वत लेते हैं, सूद खाते हैं, दीनों का रक्त चूसते हैं, असहाय का गला काटते हैं। कदापि इस योग्य नहीं कि समाज के किसी अंग को नीच या तुच्छ समझें, सबसे नीच हम हैं, जो अपने को शिक्षित, सभ्य, उदार, सच्चा समझते हैं हमारे शिक्षित भाईयों ही की बदौलत दालमण्डी आबाद है। चौक में चहल-पहल है। चकतों में रौनक है। यह मीनाबाजार हम लोगों ही ने सजाया है। ये चिडिया हम लोगों ने ही फाँसी हैं ये कठपुतलियाँ हमने बनायी है।"<sup>7</sup> इस प्रकार स्पष्ट है कि— वेश्यावृत्ति का प्रत्यक्ष तथा साक्षात् सम्बन्ध सामाजिक अत्याचारों कुप्रथाओं तथा विशिष्ट भौतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों से है। इन सामाजिक कुप्रथाओं एवं दहेज प्रथा, विवाह में कन्याओं की पसंदगी की सर्वथा उपेक्षा, कन्याओं का छोटी उम्र में विवाह करना, पति का अपनी पत्नी को स्वतंत्रता न देकर घर में कैद रखने का प्रयत्न करना, कठोर अनुशासन, पत्नी की इच्छाओं पर ध्यान न देना, आजीविका कमाने न देना, समाज का ओछापन, सामाजिक धार्मिक समारोहों, पारिवारिक उत्सवों पर वेश्याओं के नाच गाने व मुजरे करना उन्हें पैसों से मालामाल करना, उनकी प्रतिष्ठा में अभिवृद्धि करना आदि बातें जब तक समाज द्वारा दूर नहीं होंगी तब तक वेश्या समस्या का समाधान नहीं हो सकता।

वर्तमान में यह दहेज प्रथा दिन प्रतिदिन विकराल रूप धारण करती जा रही है। प्रेमचन्द ने प्रस्तुत उपन्यास के माध्यम से इस समस्या के कारण समाज में अन्य समस्याओं को उत्पन्न होते दिखाया है। आज के समय में इस दहेज प्रथा के कारण ही सैकड़ों हजारों नवयुवतियों को जिंदा जला दिया जाता है जिसका कारण खोजने पर पता चलता है कि अपने साथ पर्याप्त मात्रा में दहेज नहीं लायी थी। दहेज लोभी माता पिता व युवक ऐसे परिवारों से वैवाहिक सम्बन्ध बनाने के लिये लालायित रहते हैं, जहाँ से उन्हें अधिक से अधिक दहेज मिल सके। प्रेमचन्द ने इस दहेज प्रथा को हमारे समाज के लिये सबसे अधिक गंभीर समस्या बताया है। उन्होंने अपने उपन्यास के माध्यम से इस समस्या के उन्मूलन की बात भी कही है। कि अगर युवक— युवती दहेज विरोधी दृढ़ संकल्प ले लें तो काफी हद तक इस समस्या से निजात पायी जा सकती है।

प्रस्तुत उपन्यास में सुमन को जब होश आता है, तो उसे जीवन के यथार्थ का कुछ आभास होता है। जीवन को गहराई से देखने का अवसर मिलता है साथ ही साथ समाज के खोखलेपन, झूठे दिखावेपन का साक्षात्कार होता है तब वह सोचती है—जितना आदर मेरा अब हो रहा है, उसका शतांश भी तब नहीं होता था। एक बार मैं सेठ चिम्मनलाल के ठाकुरद्वारे में झूले देखने गयी थी, सारी रात बाहर खडी भीगती रही किसी ने भीतर नहीं जाने दिया, लेकिन कल उसी ठाकुरद्वारे में मेरा गाना हुआ तो ऐसा जान पडता था मानो मेरे चरणों से वह मन्दिर पवित्र हो गया।<sup>8</sup> विट्ठलनाथ जब उससे कहते हैं कि— "तुमने हिन्दू जाति का सिर नीचा कर दिया। इस पर वह गम्भीर हो उत्तर देती है— "आप ऐसा समझते होंगे और तो कोई ऐसा नहीं समझता। अभी कई सज्जन यहाँ से मुजरा सुनकर गये हैं सभी हिन्दू थे, लेकिन किसी का सिर नीचा नहीं मालूम होता था वह मेरे यहाँ आने से बहुत प्रसन्न थे। फिर इस मण्डी में मैं ही एक ब्राह्मणी नहीं हूँ, दो चार का नाम तो मैं अभी ले सकती हूँ। जो बहुत उँचे कुल की हैं, पर जब बिरादरी में अपना निबाह किसी तरह न देखा तो विवश होकर यहाँ चली आयी। जब हिन्दू जाति को खुद ही लाज नहीं तो फिर हम जैसी अबलायें उसकी रक्षा कहाँ तक कर सकती हैं"।<sup>9</sup> परन्तु वह सब समझती है कि भोग लिप्सा ही जीवन में सर्वस्व नहीं है क्योंकि अभी तक कोई भला मनुष्य उसके सम्पर्क में नहीं आया था। विट्ठलनाथ को वहाँ देखकर उसे एक सच्चे समाज सुधारक के दर्शन होते हैं और जीवन की वास्तविकता की पहचान उसे होने लगती है। और इस काम को वह हमेशा के लिये छोड़ने को प्रेरित होती है। उसे आज मालूम हुआ कि सुख संतोष से प्राप्त होता है, और आदर सेवा से प्राप्त किया जा सकता है। उसकी इस आदर्शमयी श्रेष्ठता से प्रेमचन्द मान कर चले हैं कि "जिस तरह अवसर पाकर

मनुष्य की पाप चेष्टा जाग्रत हो जाती है, उसी प्रकार अवसर पाकर उसकी धर्मचष्टा भी जाग्रत हो जाती है"।<sup>10</sup> वह अब विधवाश्रम में कर्मनिष्ठा में लिप्त रहती है। "जिस प्रकार कोई रोगी क्लोरोफॉम लेने के पश्चात होश में आकर अपने चीरे-फोड़े के गहरे घाव को देखता है, और पीडा तथा भय से फिर मूर्छित हो जाता है, वही दशा इस समय सुमन की थी"।<sup>11</sup>

### निष्कर्ष-

प्रेमचन्द ने सुमन के चरित्र से यह दिखा दिया है, कि कोई मनुष्य स्वभाव से पतित नहीं है। समाज की असहृदयता मनुष्य को पतन की ओर ले जाती है, और उसकी सहृदयता उत्थान की ओर"।<sup>12</sup> यह एक संकेत है कि जिन्दगी कौंटों से भरे होने के बावजूद नई और खुशहाल जिन्दगी की शुरुआत की जा सकती है।

इस प्रकार उपन्यास में सभी सामाजिक विकृतियाँ आज भी समाज में व्याप्त हैं। जिन्हें प्रेमचन्द ने भली भाँति उजागर किया है नारी जाति की विवशता, असहाय अवस्था, आर्थिक एवं शैक्षिक परतंत्रता की स्थिति का चित्रण प्रेमचन्द के उपन्यासों में पूर्ण रूप से चित्रित हुआ है। इसके अतिरिक्त समाज के धर्माचार्यों, मटाधीशों, सुधारकों के आडम्बर, ढोंग, पाखण्ड, चरित्रहीनता, दहेज प्रथा, वेश्यागमन, धूसखोरी, साम्प्रदायिक द्वेष आदि विकृतियों के वर्णन से भरा प्रस्तुत उपन्यास आज भी प्रासंगिक बना हुआ है।

### संदर्भ ग्रन्थ

- 1- प्रेमचन्द के साहित्य में अभिप्रेरणा, शिक्षा एवं मानव मूल्यों के उत्थान में योगदान -पृष्ठ सं०-177-178
- 2-सेवासदन-प्रेमचन्द- पृष्ठ सं०-16
- 3- सेवासदन- प्रेमचन्द-पृष्ठ सं०-5
- 4-सेवासदन- प्रेमचन्द-पृष्ठ सं०-217
- 5- प्रेमचन्द के उपन्यास साहित्य में सांस्कृतिक चेतना-संपादक- नित्यानन्द पटेल- पृष्ठ सं०-6
- 6-प्रेमचन्द के उपन्यास साहित्य में सांस्कृतिक चेतना- संपादक-नित्यानन्द पटेल-पृष्ठ सं०-15।
- 7-प्रेमचन्द के उपन्यास साहित्य में सांस्कृतिक चेतना- संपादक- नित्यानन्द पटेल-पृष्ठ सं०-16
- 8-सेवासदन-प्रेमचन्द-पृष्ठ सं०-87।
- 9-सेवासदन- प्रेमचन्द-पृष्ठ सं०-85।
- 10-सेवासदन-प्रेमचन्द- पृष्ठ सं०-109।
- 11-सेवासदन- प्रेमचन्द-पृष्ठ सं०-243।
- 12-हिन्दी उपन्यासों में नारी- डॉ० शैल रस्तोगी-पृष्ठ सं०-77।